॥ पद्यप्राकृतव्याकरणम् ॥

तच्च

श्रीमत्सकलशास्त्रनिष्णातपण्डितप्र-
वररामदत्तात्मजयोधपुरनिवासी
वृहत्कवि, विद्याभास्कर, वैयाक-
रणकेसरि, पण्डितगुलाल-
चन्द्रशर्मणा विरचितम् ।

भाषाभाष्यभूषितम् ।

काशी ।

भारतजीवनयन्त्रालये मुद्रितम् ।

सम्वत् १९५७ ।

उपक्रम ।

सर्व प्राकृतव्याकरण के वेत्ताओं को अथ च संस्कृत शब्द शास्त्रों को तथा संस्कृत और प्राकृत काव्यकर्त्ताओं को सविनय प्रार्थना करता हूं कि यद्यपि इस विद्यावारिमहोदधि भारतवर्ष में, प्राकृत व्याकरण के प्राचीन और नवीन अनेक ग्रन्थ रत्न प्रकाशमान हैं, तथापि उन सब के, सूत्र, वृत्ति, आदि गद्यात्मक होने से याद करने में, प्राकृत के विद्यार्थियों को विशेष कष्ट उठाना पड़ता है, और याद होने पर भी अधिक समय बीतने पर भूल जाने से सभाओं में उनको लज्जित होना पड़ता है, उक्त छात्रगण के इस असह्य दुःख को देखकर उनके सुविधा के अर्थ, मेरे पवित्र पिताजी श्रीमान् बृहत्कविविद्याभास्कर पण्डित गुरु लालचन्द्रजी महाराज वैयाकरणकेसरी ने एक नवीन ग्रन्थ, जिसका कि नाम, पद्य प्राकृतव्याकरण है और उसमें महा विद्वान् श्री हेमचन्द्राचार्य, श्री चण्डाचार्य, और श्री महाकवि वररुचि आदि के मत को लेकर दो वर्ष पूर्ण परिश्रम करके वसन्ततिलका छन्दोबद्ध ७६ संस्कृत श्लोकों में बनाया है । और उसमें यह विशेषता रक्खी है कि श्लोक १ की भाषा टीका करके सन्धि विभक्ति आदि की साधनिका सहित, श्लोक २ के नीचे लिख दी गई है । जिस से प्रत्येक मनुष्य, श्लोकों को कण्ठस्थ करके भाषा टीका को स्वयं समझ कर थोड़े ही में प्राकृत व्याकरण का विद्वान् बनकर, ६५ आगम ३२ सूत्र दश नाटक

दि में जो प्राकृत विषयक अर्थ हैं शीघ्र समझ सकेगा। इस बात को सर्व साधारण जानता है कि पाठकगण जितने समय से, गद्य को कण्ठस्थ करता है उस से चतुर्थांश परिश्रम से, पद्य, अर्थात् श्लोक को कण्ठगत कर सक्ता है। और श्लोक रचना में ऐसा चमत्कार है कि कण्ठस्थ होने से फिर विस्मृत नहीं होता है, इसलिये संस्कृत तथा प्राकृत के पाठकों के लिये विशेष करके जैन धर्म प्रचारक सभाओं के विद्यार्थियों के अर्थ यह पद्यबन्ध प्राकृतव्याकरण बहुत ही उपकारक और हर्षदायक है, इसलिये प्राकृत और संस्कृत के विद्वानों से मेरी विनय है कि आप महोदय, मेरे पिताजी के भव्य लेख को देखकर अवश्य आदर सम्प्रदान करके उन्हें और भी अधिक उत्साही करेंगे। भर्तृहरिजी ने कहा है। बोद्धारो मत्सरग्रस्ताः। परंच आप उनमे से नहीं हैं। यही हेतु मेरी याचना का है। यद्यपि मेरे पिताजी ने इस ग्रन्थ के सर्व विषयों को विज्ञापन में छपवाकर सर्व भारत में प्रसरित कर दिये थे तथापि उक्त विषयों को संक्षेप से नीचे लिखकर आप महाशयों को विदित करता हूं॥

१—प्रथम उपदेश में श्रीमान् सत्यस्वरूप परमेश्वर की स्तुति, पूर्व समय के प्राकृत ग्रन्थों के आचार्यों की प्रशंसा और उनके उपकारों का वर्णन, ग्रन्थकर्ता के वंश का वर्णन और प्राकृत के भेद तथा विभक्तियों तथा शब्दों के रूपों का वर्णन और प्रत्यय, आदेश, युष्मद्-अस्मत् शब्द के कार्य आदि॥

२—दूसरे उपदेश में स्वरों के सर्व्वक्रम तथा विभक्तियों का व्यतिक्रम तथा प्रत्यय आदि बहुत कृत्य॥

३—तीसरे उपदेश में व्यंजनों का प्रकरण-वर्णादेश, वर्ण व्यतिक्रम, वर्णलोप, वर्णआगम, वर्णद्वित्व, इत्यादिक विषय।

४—चतुर्थोपदेश में भाषान्तर के अर्थात् मागधी, शौरसेनी, पैशाचिकी आदि भाषाओं के कृत्य और पृथक् २ मुनियों के अर्थात् हेमचन्द्राचार्य, चण्डाचार्य, महाकवि वररुचि, आदि के मतकार्य, फिर हेमचन्द्राचार्य मत से तीनोंही लिङ्गों में इकारान्त, उकारान्त, ऋकारान्त, शब्दों के रूप आदि और भूमण्डल के विद्वानों से प्रार्थना करके ग्रन्थ समाप्त किया है ॥

इन चार उपदेशों युक्त प्राकृत व्याकरण को संस्कृत श्लोकबद्ध भाषा टीका सहित ऐसा चमत्कारी बनाया है कि इतने छोटे से ग्रन्थ में बहुत विषय प्राकृत का भर दिया है अर्थात् दूसरे और तीसरे उपदेशों में जो स्वर और व्यंजनों का इस कदर वर्णन है कि इन दोनों कार्यों से-शब्द-रूप-धातुरूप-प्रत्ययवाचक तद्धित और कृदन्त-कारक आदि की साधनिका सरल रीति से हो सकेगी और छात्रगण के वास्ते बड़ा भारी उपकार श्रीमान् परब्रह्म परमात्मा का किया हुआ मेरे पिताजी के हस्तगत हुआ है इसलिये शिष्ट विद्वानों के आदरणीय होना उचित है। अब काव्यकर्त्ताओं से प्रार्थना है कि प्रथम तो मेरे पिताजी ने १५ वर्ष पर्यन्त काशीपुरी में निवास करके, व्याकरण, न्याय ज्योतिष, साहित्य, भैषज्य प्रभृति शास्त्राध्ययन किया उस परिश्रम के तथा श्रीपरमेश्वर की कृपा के हेतु से उन्होंने संस्कृत के ग्रन्थ ज्युबिलिप्रमोदिका १ सेनापतिकीर्तिचन्द्रोदय २ मणियशोदीपिका ३ रदान्योक्तिकल्पद्रुम ४ मोद्दमूलरयशोदीपिका ५ कच्छनेरशकीर्तिचन्द्रोदय ६ भास्कर यशोदीपिका ७ जगद्भूषण ८ विपुलयशोदीपिका ९ यशवन्तयशोदीपिका १० विटनीयशोदीपिका ११ छत्रपतियशोदीपिका १२ न्यायसमुच्चय १३ पद्यव्याकरण १४ (पद्यकौमुदी) पद्य-

चन्द्रिका १५ भोजनविवेक १६ और आमिषसमीक्षा १७ आदि ब-नाये हैं उनमें से कितनेक प्रसिद्ध भी हुए हैं । और भाषा कविता विषयक ग्रन्थ, रामचन्द्रोदय १ अर्जुनपर्व २ प्रतापपचीशी ३ पोलो-शतक ४ सुखदेवबहत्तरी ५ हरजीबतीसी ६ प्रतापगुणचन्द्रोदय ७ हनुमनकरुणाबतीशी ८ सीताकरुणाबतीशी ९ रामचन्द्रकरुणा बतीशी १० यावूअष्टक ११ रणजीतपचीशी १२ नाहरगुण पंचाशि-का १३ ईश्वरप्रार्थना १४ यशवन्तयशोदीपिका १५ और तखत य-शोदीपिका १६ आदि बहुत से बनाये हैं । उक्त पिता जी की वि-द्वत्ता पर प्रसन्न होकर, श्रीमान् अनेक शुभ गुण शोभायमान राज-राजेश्वर महाराजाधिराज श्री वैकुण्ठवासी महाराजा जी श्री १०८ श्री यशवन्तसिंह जी बाहादुर-जी. सी. ऐस. आई. मरुधरनरेश्वर ने उनको पग में पहनने को सुवर्ण और पालकी आदि प्रतिष्ठा को दो दफे इनायत फरमाई और साम्प्रति श्रीमान् अखण्डप्रतापी राज-राजेश्वर महाराजाधिराज महाराजा जी श्री १०८ श्री सरदार सिंह जी बहादुर भी उसी प्रकार अनुग्रह फरमाते हैं । और उक्त श्रीमान् के काका साहेब श्रीमन्महाराजाधिराज कर्नल, सर, प्रतापसिंह जी बहादुर-जी. सी. ऐस्. आई। ऐल्-एल्. डी. सी. बी. एडी. सी. श्रीमान् हिजूरायल्-हाईनस दी प्रिंस आफ वेल्स बहादुर-और मुसाहेब् आला राज मारवाड़ भी विद्या की कदर फरमाते रहते हैं । और इस वि-द्याही की कदर फरमाने में श्रीमान् अखण्ड प्रतापी भारतदिवाकर म-हाराजाधिराज श्री १०८ श्रीसरफतेसिंह बहादुर-जी. सी. एस. आई. मेवाडनरेन्द्र ने दो दफे खिल्लत् इनायत् फरमाई मय मानपत्रों के । और इसी तरह श्रीमान् महाराजा बहादुर श्री १०८ श्रीभावनगर

श्रीमान् महाराजा साहेब बहादुर श्री १०८ श्रीमैसोर बङ्गलोर, श्रीमान् महाराजा बहादुर श्री १०८ श्रीसाहूछत्रपती बहादुर. जी. सी. एस्. आई. कोल्हापुर नरेश्वर ने तथा श्रीमान् श्री १०८ श्री सरवी भाजी जाम साहेब बहादुर-के. सी. एस. आई जामनगर ने तथा श्री मान् श्री १०८ श्री सवाई महाराव साहेब सर खेंगारजी बहादुर-जी. सी. आई. ई कच्छनरेश्वर ने तथा श्री मान् स्वर्गवासी महाराजा जी श्री १०८ श्री रणजीतसिंह जी बहादुर के. सी. एस. आई. रतलाम ने तथा श्रीमान् स्वर्गवासी महाराजा श्री बलदेवसिंह बहादुर आवागढ़ ने तथा श्रीमान् महाराजाधिराज महाराजा श्री १०८ श्री हीरासिंह बहादुर-जी. सी. एस्. आई. नाभा ने तथा श्री मान् महाराजा श्री सवाई महेन्द्र महाराजा श्री १०८ श्री प्रतापसिंह जू देव बहादुर-के. सी. आई. ई. ओड़छा ने तथा श्रीमान् आनरेबिल महाराजा श्री १०८ श्री प्रतापनारायणसिंह बहादुर. के. सी. आई ई अयोध्यानरेश ने तथा श्रीमान् महाराणा साहेब श्री १०८ श्री ठाकुर साहेब बालसिंह जी बहादुर बड़वांण ने तथा श्रीमान् महाराजासाहेब श्री १०८ श्री लक्ष्मीश्वरसिंह बहादुर-के. सी. एस्. आई दरभंगाने तथा श्रीमान् दीवांण बहादुर मणिभाई जशभाइ. सी. एस् आई. लेट प्राइम् मिनिष्टर बड़ोदा ष्टेट आदि ने मेरे पिता जी को विद्या की प्रसन्नता पूर्वक लिखतें इनायत फरमाई हैं। और श्रीमान् महाराजा साहेब बहादुर श्री १०८ श्री जयपुर-कोटा-तालभूपाल-टूंक-लूनावाड़ा सुहावल-मगडी-नयपाल-नाहन आदि-४८ रियासतों से मान्यपत्र मिले हैं और लिटरेरी सोसाईटी कलकत्ता तथा बरेली इंस्टिट्यूट-काशी के पण्डितों से श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्य स्वामी महाराज भास्करानन्द

सरस्वती जी आदि से सुवर्ण के पदक तथा मान्यपत्र मिले हैं और भी कई विद्यास्थानों से रौप्यपदक मिले हैं और अभी मेरे पिता जी की निर्मित पद्यव्याकरण अर्थात् पद्यकौमुदी ग्रन्थ पर प्रसन्न होकर उक्त स्वामी जी ने सर्व राजकीय कर्मचारियों की सभा करके वैयाकरणकेसरी का विशेषण नाम सुवर्णपदक सहित मय मानपत्र के सम्प्रदान किया है। श्रीमती महानीतिमती राजराजेश्वरी भारतेश्वरी श्रीमलिका महाराणी अखण्ड ऐश्वर्यवती के किये हुये भारतीय प्रजा के उपकारों को संस्कृत श्लोक बद्ध रचकर उनकी एक पुस्तक ज्युबिलीप्रमोदिका नाम की जो मौके प्रथम ज्युबिली के उत्सव पर बनाई और उसके वृत्तांत सहित एक तार प्रार्थना का श्रीमान् वाईसरोय लार्ड डफरिन् बाबा बहादुर के मुलाहिजे में भेजा। जवाब में उक्त गवर्नरजनरल बहादुर ने एक हुकुम उक्त पुस्तक के बारे में मार्फत श्रीमान् एजेण्ट गवर्नर जनरल बहादुर राजपूताना के द्वारा जोधपुर में भेजा था फिर ४ पुस्तकें मार्फत राज्य जोधपुर के होकर श्रीरेसिडेण्ट के तथा श्रीमान्-ए-जी-जी के द्वारा श्रीमान् वाइस राय बहादुर के मुलाहिजे में गुजरीं। जवाब में एक खलीता उक्त श्रीमान् का हेट में आया उस में हिंदुस्तान की गवर्नमेंट ने मेरे पिता जी को धन्यवाद दिया है। और फिर वे पुस्तकें हिन्दुस्तान में तथा लन्दन, अमेरिका, फ्रांस, जरमन् आदि देशों के योग्य तथा विद्वानों को भेजी गई जवाब में श्रीमती भारत राजराजेश्वरी के चिरंजीव श्रीमान् हिज रायल हाइनेश् प्रिंस आफवेल्स से तथा द्वितीय प्रिंस श्रीमान् डूचक आफ एडिम्बरा से तथा तृतीय कुमार श्रीमान् डूचक आफ कनाट महोदय से धन्यवादपत्र मिले हैं। तथा राइट आनरे

बिल् श्रीमान् लार्ड रिपिन् तथा लार्ड क्रास तथा लार्ड सालस्वरी, लार्ड नार्थब्रुक, लार्ड लिटिन, लार्ड डफरिन्, आवा, लार्ड लांसडोन्, लार्ड रावर्ट, लार्ड रे आदि महाशयों से मान्यपत्र मिले हैं। तथा सरकारीविद्याभाग के अध्यक्ष प्रोफेसर, एफ मोक्षमूलर भट्ट, ओक्सफोर्ड से तथा डाक्टर फिसिल् जरमन् से तथा प्रोफेसर अर्थर वेनिस् काशी से तथा मिष्टर विदौन अमेरीका से तथा महाविद्वान् ग्रिफिथ कोटगिरी आदि विद्वानों से मानपत्र मिले हैं। और बम्बै, कच्छ देहली, अंजार आदि शहरों के विद्वानों ने सभायें करके मानपत्र दिये हैं। ऐसे विद्वान् का बनाया हुआ यह ग्रन्थ है उसको कृपा की पवित्र दृष्टि से अवलोकन करेंगे और इस ग्रन्थ की कविता जो के व्याकरण के सूत्र वृत्यर्थ न विगड़ते, छन्द को भी सही रक्खा है, । परन्तु बहुत ही कठिनता शब्द और छन्द दोनोंसही रखने में किसी २ जगह पर देखकर कहीं २ लघु को दीर्घ और दीर्घ को लघु मानकर अथच सस्वर को निस्वर एवं निस्वर को सस्वर मानकर निर्वाह करके छन्द को विशल्प किया है। इसलिये मेरी प्रार्थना है कि जिससमय इस ग्रन्थ को देखते २ और आनन्दित होते २ कहीं २ पूर्वोक्त विषय देखने में आजावें उस समय में प्रथम तो साहित्यशास्त्र के रूल को विचारें और फिर महा कविकालीदासकृत कुमारसम्भव काव्य के इस श्लोक का ध्यान कर लेवें ॥

(एको हि दोषो गुणसन्निपाते ।
निमज्जतीन्दोः किरणेष्विवाङ्कः ।)

तो मैं आशा रखता हूं कि इस पद्यप्राकृतव्याकरण ग्रन्थ को अवश्यही आप महोदय आदर सम्प्रदान करेंगे कि इस छोटे से ग्रन्थ

में कैसा चमत्कार बताया गया है कि जिस में महाश्रम से बचकर अ-त्यल्प श्रम से प्राकृत ग्रन्थों को भली भांत समुझ लेगा । ये कैसा लाभ-दायक ग्रन्थ विद्यार्थियों के अथच विद्वानों के लिये बनायागया है मेरी प्रार्थना में कोई असंगत वाक्य बाल्यचांचल्य से लिखा गया हो तो मैं क्षमा मांग कर अब मैं परमेश्वर से प्रार्थना करता हूं कि मेरे पवित्र पिता जी की कृति का सुकृत सदा सर्वदा स्थिर रहे ॥

सर्व संस्कृत और प्राकृत के विद्वानों का दीन शुभचिन्तक किङ्कर

पण्डित–सिवदानमल्ल जोधपुर–मारवाड़ ।



॥ ॐ तत्सत् ॥

प्राकृतपद्यव्याकरणम् ।

वसन्ततिलकावृत्तम् ।

सत्यस्वरूपम्प्रणम्य परमेश्वरमादितत्वं ।
तापत्रयोपशमनं कमनीयरूपम् ॥
या प्राकृते मुनिवरैरुदिताऽत्र वाक्तां ।
ग्रन्थाम्यहं गिरमलं सरलैस्सुपद्यैः ॥ १ ॥

टी० श्रीमन् सत्यस्वरूप परमेश्वर, आदिकारण और तीन तापों के निवारक मनोहर मूर्त्ति को प्रणाम करके, जो वाणी पूर्वज मुनिवरों ने प्राकृत विषयक शब्दशास्त्र में कही है, उनको परिपूर्ण सरल श्लोक बना कर के गुम्फित करता हूं ॥ १ ॥

ये हेमचन्द्रवररुच्यभिधानपूर्वाः ।
ये चण्डमेघविजयप्रमुखास्समासन् ॥
पूर्वं परोपकृतये कृतिनोऽपि तेऽद्य ।
वृन्दारका इव चरन्त्यमराऽभिधेयाः ॥ २ ॥

टी० पूर्व समय में श्रीहेमचन्द्राचार्य, और महा कवि वररुचि से आदि ले कर तथा श्रीमान् चण्डाचार्य और श्रीविद्वन्मण्डलमण्डन मेघ

विजयसूरीश्वर प्रभृति प्रादुर्भूत होकर परोपकार में सुकृती हुये थे वो ॥ २ ॥

ग्रन्थानरोक्तिविषया विहितास्तु पूर्वैः ॥
तद्बोधनो भुवि बुधघनसूत्रगाथाः ।
बुध्यन्त आगमचयाननुनाटकाद्याः ॥ ३ ॥

टी० सत्य उपकार करने के कार्य में कृतकृत्य समयवाले पूर्वोक्त आचार्यों नें प्राकृत उक्ति के अनेक ग्रन्थ रचे हैं, उन ग्रन्थों के बोध से इस पृथ्वी पर मनुष्य पण्डित होकर, कठिन सूत्रों ३२ की गाथाओं के और ४५ आगम समूह के तथा नाटक प्रभृति के अर्थ को अच्छी तरह से जान जाते हैं ॥ ३ ॥

दिष्टकलेरिति किलाद्यतने तनुत्रे- ।
न्यूनान् गुणैर्बहुजनान्मतिभिर्वयोभिः ॥
गद्यं यतः प्रपठनं कठिनं तु तेषां ।
विज्ञाय विज्ञमनसो मनसा विचेरुः ॥ ४ ॥

टी० वर्तमान कलियुग के समय में अभेद्य कवचरूपी उत्तम गुणों से, बुद्धि से, तथा आयुः से हीन बहुत से मनुष्यों को और उक्त कारणों से, गद्यात्मक ग्रन्थों को पढ़ने में उनके कठिनता को देख कर उक्त मुनिवर अपने चित्त में विचार करने लगे ॥ ४ ॥

तेषां महागुणभृतां दययाऽहमद्य ।
पद्यात्मकं प्रचुरप्राकृतमातनोमि ॥

श्लोकैर्वसन्ततिलकोदितवृत्तवर्यैः—।
श्छात्रप्रपाठनविधौ शिवदं यथा स्यात् ॥ ५ ॥

टी० उक्त महागुणोंवाले महर्षियों की दया से जिससे विद्यार्थियों के प्राकृत पढ़ने में सुखदायक होवे वैसा, वसन्ततिलका छन्दोबद्ध श्लोक रचना पूर्वक, प्राकृतपद्यव्याकरण को मैं विस्तृत करता हूं ॥ ५ ॥

षट्शास्त्रवित्सकलसद्गुणगुम्फगेयः ।
श्रीरामदत्तमतिमान् नृपमाननीयः ॥
विद्वत्समाज इह सत्कृत एकसभ्यो ।
विप्रप्रभूरप्रवरपुष्टिकरेषु विज्ञः ॥ ६ ॥
सन्मान्यपर्वतमुनेः शुचिसन्ततौ यः ।
श्रीवत्ससंज्ञकपुरोहितजातिजीनः ॥
श्रीतख्तसिंहनृपतेरिह शिष्टदेव्याः ।
व्यासो बभूव हरिभक्तिरतो महात्मा ॥ ७ ॥
तस्यात्मजात्रय उदारमतेर्बभूवु- ।
र्ज्येष्ठौ तु तेषु शिवशङ्करनामधेयौ ॥
ताभ्यां कनिष्ट इह पद्यविधौ प्रवृत्तो ।
विद्वत्पदाम्बुजजनो द्विजलालचन्द्रः ॥ ८ ॥

टी० षट्शास्त्र के वेत्ता और सम्पूर्ण सद्गुण समूह करके गेय और महाराजाओं के माननीय और यहां विद्वानों के समाज में सत्कार-योग्य मुख्य सभासद श्रीयुत रामदत्त जी शास्त्री बड़े उत्तम बु-

विद्वान् पुष्करणादिकों में सिद्ध हुये थे ॥ ६ ॥ उक्त पण्डित जी अपने पूर्वज, परंपरा से पवित्र सन्तति में तथा पुरोहितों की जाति में प्रतिष्ठित थे, और श्रीमान् राजराजेश्वर महाराजाधिराज स्वर्गवासी महाराजा जी श्री १०८ श्रीजसवन्तसिंह जी बहादुर जी. सी. एस्. आई. मरुधरनरेन्द्र की पटरानी श्रीमती महाराणीजी श्री १०५ श्रीचन्द्रावत जी साहिबा के व्यास जी थे, और श्रीहरिभक्तिरत महात्मा थे ॥ ७ ॥ उक्त पण्डित जी उदारबुद्धि के तीन पुत्र हुये, उनमें से श्रीयुत शिवदत्त जी शास्त्री और श्रीयुत शङ्करजी ये दो बड़े पुत्र और इन दोनों से छोटा पुत्र जो कि इस प्राकृतव्याकरण की पद्य रचना करने में प्रवृत्त हुआ और सब विद्वानों के चरण कमल का दास, लालचन्द नाम का मैं हूं ॥ ८ ॥

आशान्वितोऽस्मि निजचित्तउपेन्द्रतोऽहं ।
सोऽयं श्रमस्सफलतां मम चेष्यतीह ॥
सत्प्राकृतीयविषयोक्तिसुबोधवृद्धयै ।
स्वल्पश्रमेण पठनाय च पुस्तकेऽस्मिन् ॥९॥

टी० मैं परमेश्वर से नित्य आशावान् हूं कि इस पुस्तक में जो मेरा परिश्रम है वह प्राकृतविषयक पुस्तकों में अल्पतर परिश्रम से पढ़ने पूर्वक, विद्यार्थियों का मुख्य है उसके लिये सफल होजायगा ॥ ९ ॥

गद्यात्मकेषु किल दीर्घतरेषु सत्सु ।
सत्प्राकृतोक्तिविषयेष्वमितेषु तेषु ॥
शब्दार्णवप्रतरणे पिहितोद्यमानां ।
पद्यस्तवं विरचयामि मुदे शिशूनाम् ॥ १० ॥

टी॰ यद्यपि इस भारतभूमि में बड़े लम्बे चौड़े प्राकृतव्याकरण शास्त्र बहुत हैं, तथापि उनके गद्यात्मक होने से उन ग्रन्थों में शब्द समुद्र को तरने में उद्यमहीन हो जानेवाले विद्यार्थियों के हर्ष के वास्ते पद्य अर्थात् श्लोकबद्ध प्राकृतव्याकरणरूपी (प्लव) अल्प नौका, रचता हूं ॥ १० ॥

लोपः क्वचिद्भवति सन्धिरपि क्वचित्स्यात् ।
वर्णाविपर्यय इह क्वचिदेव शास्त्रे ॥
अन्त्यादिमध्यनिलयेषु तथाऽऽगमोऽपि ।
लक्ष्यस्सदैव विहितो मुनिभाषिताढ्ये ॥ ११ ॥

टी॰ प्राकृतव्याकरण में किसी जगह पर लोप, किसी स्थान पर सन्धि, किसी पर वर्णविपर्यय और किसी जगह पर, आदि, मध्य, और अन्त में आगम होते हैं, परन्तु ये विधि पूर्वाचार्यों के सुभाषित पदों की सिद्धि के अनुकूल हैं ॥ ११ ॥

त्रेधास्ति प्राकृतमिदं गदितं मतिज्ञै- ।
स्तेष्वाद्यमत्र किल संस्कृतयोनिसंज्ञम् ॥
ख्यातं तु संस्कृतसमं मुनिभिर्द्वितीयं ।
देशीप्रसिद्धमिति तद्विहितं तृतीयम् ॥ १२ ॥

टी॰ प्राकृत के तीन भेद, बुद्धिमानों के कहे हुये हैं, उनमें प्रथम भेद, संस्कृतयोनि नाम का, दुसरा भेद संस्कृत सम नाम का, और तीसरा भेद, देशी प्रसिद्ध नाम का, मुनिप्रणीत हैं ॥ १२ ॥

देशीप्रसिद्धमिति यत्तदनेकधाऽस्ति ।
देशोक्तिनामनिकरैर्नियमैर्नितान्तम् ॥
कर्णाटकान्ध्रवरराष्ट्रमुखैरशेषैः ।
पर्यायशब्दसहितैर्घनवर्णमूलैः ॥ १३ ॥

टी० पूर्वोक्त देशी प्रसिद्ध नाम का तीसरा भेद, अनेक प्रकार से देशों की उक्ति के नाम समूह के नियमों से नित्य प्रसिद्ध है, अर्थात् कर्णाटक, अन्ध्र, और, महाराष्ट्र प्रभृति बहुत से देशों की उक्ति से और पर्याय शब्दों सहित जिनमे कि बहुत वर्णोरूपी मूल हैं, जैसा कि भ-ल्लरि अजा का नाम है । इल्लपुलिन्दाण, व्याघ्र का नाम है । तुङ्गी रात्रि का नाम है ॥ १३ ॥

स्त्रीपुंनपुंसकमिति त्रिदशोक्तितुल्यं ।
तत्प्राकृते त्रिविधलिङ्गमुसन्ति सन्तः ॥
तेभ्यः परे मुनिमतेन सुरोक्तिकल्पाः ।
स्वाद्या भवन्ति खलु सप्तविभक्तयोऽपि ॥१४॥

टी० प्राकृत में तीनों ही लिङ्ग संस्कृत के तुल्य होते हैं, अर्थात् पुलिङ्ग, स्त्रीलिङ्ग और नपुंसकलिङ्ग होते हैं, उक्त तीनों लिङ्गवाचक शब्दों से परे सदैव मुनि मत से [illegible] आदिक विभक्तियें आती हैं । इन तीनों लिङ्गों के शब्दों के रूपों के उदाहरण साधनिका सहित नीचे लिखता हूं, यथा पुलिङ्ग वाचक, यज्ञ शब्द के रूपों को लिखता हूं, प्रथमाविभक्ति के रूप. जण्णो. जण्णा. जण्णा । द्वितीया के रूप. जण्णं जण्णा. जण्णे. । तृतीया जण्णेणं. जण्णेण. जण्णेहिं. जण्णेहिं. ज-ण्णेहि । चतुर्थी. जण्णस्स. जण्णाणं. जण्णाहं । पञ्चमी. जण्णाउ. ज-

णाउ. जएणाहिं. जएणाहितो. जएणा. जएणेहिंतो। षष्ठी. जएणस्स. जएणाणं. जएणाहं । सप्तमी. जएणे. जएणम्मि. जएणेसुं. जएणेसु.। सम्बोधन. जएणा. जएणो. जएणा. । अब यज्ञ शब्द के रूपों की साधनिका को लिखता हूं। श्लोक ४६ य, को ज, हुवा तब. ज ज्ञः अब, ज्ञ, के वर्णविश्लेष करने से । ज.ज्.ञः । इस व्यवस्था में श्लोक ४६-४७-वर्ग पञ्चम व्यञ्जन, ञ, का लोप हुवा तब. जज्अः । इस व्यवस्था में श्लोक ५० ज, को, ण हुवा फिर श्लोक ५१ संयोग के अवशेषवर्ण को द्वित्व हुवा. तब. ज-ण्-ण्-अः । फिर श्लोक ३२ विसर्ग को, ओ, हुवा तब, ज-ण्-ण्-अ-ओ हुवा तब फिर, श्लोक २८ स्वरों के स्वरपरे होने से लोप हुवा तब, जएणो । ये प्रथमा का एकवचन सिद्ध हुवा। अब द्विवचन में पूर्ववत् जएण्अऔ । इस व्यवस्था में श्लोक ३३ द्विवचन को बहुवचन हुवा तब, जएण्अ, जस्। फिर श्लोक १७ जस् को पूर्व स्वर होने से। जएण्अअ । श्लोक २८ स्वरों के स्वरपरे होने से सन्धि हुई। जएणा । द्वितीया के प्रथम वचन में। जएणअम्। श्लोक २८ स्वरों का स्वरपरे होने से लोप हुवा। जएण अम्। श्लोक ३२ व्यञ्जन को अनुस्वार होने से। जएणं । द्वितीया के द्विवचन को बहुवचन होने से। जएण अ। का। जएण शस्। इस व्यवस्था में एक पक्ष में श्लोक १७ शस् को पूर्वस्वर का आदेश हुवा तब। जएणअ। फिर श्लोक २८ सन्धि होने से। जएणा । द्वितीय पक्ष में। जएण शस् । श्लोक १८ शस् को ए होने से. जएण ए। फिर श्लोक २८ स्वर का लोप होने से। जएणे। तृतीया के एक वचन में। जएण, टा। इस व्यवस्था में श्लोक १५ टा को, ण, हुवा। तब-जएण, ण । फिर श्लोक ३१ अन्त्यस्वर अन्य के स्थान में होने से. ए. होने से श्लोक ३५ व्यञ्जन को अनुस्वार का आगम होने

से । जयणेणं । अब तृतीया के द्विवचन में । जयणभ्यां । इसमें श्लोक १३ द्विवचन को बहुवचन होने से । जयणभिस् । फिर श्लोक १९ भिस् को, हिं, आदेश होने से फिर श्लोक ३१ स्वर को, ए, होने से । जयणेहिं । द्वितीय पक्ष में श्लोक ३५ अनुस्वार का लोप हुआ । तब जयणेहि । अब चतुर्थी विभक्ति । जयण, ङे । इस में श्लोक ३६ चतुर्थी को षष्ठी विभक्ति का आदेश हुआ तब, जयण, ङस् । फिर, श्लोक १८ ङस् को, स्स, हुआ तब-जयणस्स । अब-जयण, आम् । तब श्लोक १५ आम् को, ण, हुआ फिर, इ, विकल्प से हुआ फिर श्लोक ३२ व्यञ्जन को अकार का आगम हुआ फिर श्लोक २८ सन्धि हुआ । फिर श्लोक ३५ अनुस्वार का आगम हुआ तब । जयणाणं । जयणाहं । फिर पञ्चमी के एकवचन में-यज्ञात्-जयणात् । के तकार को श्लोक १९ ओ-आदेश । तब । जयणाओ । उ आदेश । तब । जयणाउ । हिं आदेश । जयणाहि । हिंतो आदेश । जयणाहिंतो । लोप पक्ष में । जयणा । फिर श्लोक ३१ स्वर को ए होने से । जयणेहिंतो । षष्ठी विभक्ति के रूप उपर लिखे हुये चतुर्थी को षष्ठी आदेश की तरह जानलेना । अब सप्तमी विभक्ति के प्रथम वचन में । जयण, ङि । इस व्यवस्था में श्लोक १८ ङि को, ए, और म्मि होने से फिर श्लोक २८ स्वरलोप हुआ तब, जयणे । जयणम्मि । बहुवचन में । जयण, सु इसमें श्लोक ३१ स्वर को, ए, हुआ तब, जयणेसु । पक्ष में श्लोक ३२ अनुस्वार आगम होने से, जयणेसुं । इसी प्रकार से पुल्लिङ्गवाचक अकारान्त शब्द अर्थात् घट-पट-राम-कृष्ण-वीतराग-देव-आदिक जानलेना । अब स्त्रीलिङ्गवाचक आकारान्त मात्रा शब्द के रूपों को लिखता हूं । प्रथमा विभक्ति के रूप । मत्ता. मत्ताओ. मत्ताउ । द्वितीया । मत्तं. मत्ताउ. मत्ताउ. मत्ता । तृतीया । मत्ताए. मत्ताहिं. मत्ताहि. मत्ताहिं. मत्ताहिं. । चतुर्थी ।

मत्ताए. मत्ताणं. मत्ताहं । पञ्चमी । मत्ताए. मत्ताहिंतो । षष्ठी । मत्ताए। मत्ताणं. मत्ताहं । सप्तमी । मत्ताए. मत्तासु. मत्तासुं । सम्बोधन । हेमत्ता. हे मत्ताओ. हे मत्ताउ. हे मत्ता। अब इन सातों विभक्तियों के रूपों की साधनिका को लिखता हूँ। यथा प्रथमा के एकवचन का रूप. मात्रा। इसमें श्लोक ३१ संयोग परे होने से ह्रस्व होने से. मत्रा । फिर श्लोक ४६ वर्ग से परे अवर्ग्य व्यञ्जन का लोप हुआ तब, मत् आ । फिर श्लोक ५२ त को द्वित्व हुआ, फिर श्लोक २८ सन्धि हुआ तब. मत्ता। अब द्विवचन को श्लोक १३ बहुवचन हुआ । तब । मत्ता ओ । इसका । मत्ता-जस् । फिर श्लोक १६ जस् को-ओ-आदेश हुआ तब. मत्ता ओ । उ-आदेश हुआ तब. मत्ता उ । लोप में मत्ता । द्वितीया के प्रथम वचन का । मत्ता-अम् । ऐसी व्यवस्था में श्लोक ३८ आकार लोप. और इसी से सन्धिकार्य तथा श्लोक ३२ व्यञ्जन का अनुस्वार हुआ । तब । मत्तं। अब. मत्ता-शस् । में श्लोक १६ पूर्ववत्. मत्ता ओ। मत्ता उ। मत्ता। अब तृतीया के प्रथम वचन में. मत्ता-टा । इसमें श्लोक १६ टा को, ए, होने से मत्ताए । मत्ता-भिस् । इसमें श्लोक १६ भिस् को, हिं, आदेश होने से । मत्ता हिं । फिर पक्ष में श्लोक ३५ अनुस्वार के लोप होने से। मत्ताहि। ये दो रूप भिस् के हुये। अब श्लोक १२ चतुर्थी को षष्ठी आदेश होने से । मत्ता-ङस् । इससे श्लोक १६ ए होने से । मत्ताए । अब, मत्ता-आम्। इसमें श्लोक १५ ण हुआ। और श्लोक ३५ अनुस्वार का आगम तब । मत्ताणं । पक्ष में आम् । को श्लोक १५ ह हुआ, तब, मत्ताहं। पञ्चमी के एक वचन में। मत्ता-ङसि। इसमें श्लोक १६ ए होने से मत्ताए। मत्ता-भ्यस् । श्लोक १६ पूर्ववत्। मत्ताहिंतो । षष्ठी पूर्ववत् । सप्तमी । मत्ता-ङि । श्लोक १६ ए होने से । मत्ताए मत्तासु । मत्ता सुं । पूर्ववत् । सम्बोधन प्रथमावत् ॥ इसी

तरह से-अंबा. माया. मेधा । अजा । एडका । अश्वा । इत्यादिक आ-वन्त शब्द जान लेना ॥ अब नपुंसक लिङ्गवाचक फल शब्द का रूप लिखता हूँ । प्रथमा । फलं फलाणि । फलाइँ । द्वितीया । प्रथमावत् । शेष रहे तृतीयादिक शब्द यक्ष शब्दवत् जान लेना । अब इनकी साधनिका को लिखता हूं । फल-सु-इसका फलम् । इसमें श्लोक ३२ व्यञ्जन लोप. फिर श्लोक ३५ अनुस्वार का आगम होने से । फलं । अब-फल-जस् । श्लोक ५० ज, को, ण हुआ और श्लोक ३२ व्यञ्जन का लोप होने से । फल-ण । फिर श्लोक ३२ अ, का, आगम हुआ । तब । फला-ण । फिर श्लोक १० अन्त्यस्वर के स्थान में इ होने से । फलाणि । फिर श्लोक ३५ अनुस्वार का आगम । तब फलाणिं । इसमें श्लोक ४५ ल, से, परे व्यञ्जन, ण, का लोप होने से । फलाइं । फिर श्लोक ३६ अर्ध अनुस्वार होने से । फलाइँ । द्वितीया । फलं । पूर्ववत् । अब-फल-शस् । इसमें । श, का, स हुआ श्लोक ५० से । फिर श्लोक ४९ स, को, ह, हुआ । फिर श्लोक ५० ह, को र, हुआ । फिर श्लोक ५० र, को, ण, हुआ । फल-ण । बाकी साधनिका जस् की तरह जान लेना । फलाणि । फलाइं । फलाइँ शेष विभक्तियें यक्ष शब्दवत् साधनिका समुझनी

लिङ्गेषु तेषु भवति क्वचिदत्र शास्त्रे
यद्व्यत्ययस्तु तदनागमसागमस्य ॥
आमोण इत्यपि विकल्पत एव होऽस्य ।
टाणोरह आम इह तस्य तु संख्यकायाः ॥१५॥

टी०—इन तीनों लिङ्गों के शब्दों में कहीं २ लिङ्ग व्यत्यय भी

होता है जैसा कि देव शब्द पुलिङ्ग वाचक भी प्राकृत में नपुंसकवत् हो जाता है यथा. देवाणि । देवाइं । देवाइँ ॥ आगम रहित-वा. आगम सहित आम् को, णकार होता है । और हकार विकल्प से होता है । लिङ्ग से परे-टा-को, ण, होता है। संख्या से परे आगम सहित वा रहित आम् को, रह होता है. जैसा कि । तिण्हं । चउण्हं । पंचण्हं । यथा. त्रयाणां । चतुर्णां । पञ्चानां । इनके रूप होते हैं ॥१५॥

लिङ्गात्परस्य च भिसोनिलये हि मेव
लिङ्गाद्भ्यसो ग्रह इतीह परस्य हिन्तो ।
एवं स्त्रियां भवति चेत्यपि टादिकानाम्
स्युर्वै स्त्रियां जसशसोरपिओउलोपाः ॥ १६ ॥

टी०—लिङ्ग से परे भिस् को, हिं, आदेश होता है, और लिङ्ग से परे भ्यस् को, हिन्तो, आदेश होता है । स्त्रीलिङ्ग में, टा. ङसि. ङस्. और, ङि वचन को, ए, होता है। स्त्रीलिङ्ग में जस्-और शस् को-ओ-उ आदेश और लोप होते हैं ।

णिण्द्वित्रिशब्दपरयोरिह जस्शसोर्वै
पूर्वस्वरोभवति पुंसि तु जस्शसोश्च ।
णो जस्शसोर्भवति पुंसि ङसेरपीह
णः स्सश्च पुंसि भवतीतिङसस्सदेव ॥ १७ ॥

टी०—द्वि और तृ शब्द से परे जस् और शस् को, णिण, आदेश होता है जैसा कि द्वि शब्द द्विवचनान्त के औ को जस् आदेश होकर उक्त आदेश होने ने. दुणिण । तिणिण । तृ शब्द के जस्-शस्

परे होने से उनको उक्त आदेश होने से तिशिरा । पुल्लिङ्ग में वर्तमान जस् और शस् को पूर्व स्वर का आदेश होता है। जैसा कि देवा। भगी। गुरू पुल्लिङ्ग में जस् और शस् को, ण, का आदेश होता है और ङ सि को भी होता है। जैसा कि. मुनिणोपस्स । पुल्लिङ्ग में ङस् को, णो, होता है और, स्स भी होता है। जैसा कि. मुणिणो रूवं। मुणिस्स रूवं।

चादात्परस्य च ङसः स्सइहैव णोन
एम्मिश्चङेर्भवत इत्युभयो हि पुंसि ।
आदुत्तरस्य च शसः किल पुंसि नित्य-
मेत्वं भवत्यपि यथा मुनिनोक्तमत्र ॥ १८ ॥

टी०—चकार कथन से अकार से परे ङस् को द्वित्व सकारही हो जाता है, णकार नहीं होता है। पुल्लिङ्ग में ङि वचन को, ए, आदेश और, म्मि, आदेश होते हैं । पुल्लिङ्ग में अकार से परे शस् को, ए, आदेश होता है मुनियों के मत से ॥ १८ ॥

हिं हिं तओडरितिलोपविधिश्च पंचाऽ-
म्याऽऽदेशजस्यङसआतइमेप्रदिष्टाः ।
सेःस्यात्तुसर्ववचनेषु सदैवषष्ठ्याम्
गेहे द्वयोस्तदिदमोरिहशास्त्र एव ॥ १९ ॥

टी०—पंचमी के आदेश तकार को-ओ-उ-हिं-हिं तो. और लोप होते हैं । तत् और इदम् शब्द को षष्ठी विभक्ति के सर्ववचनों और सर्व लिङ्गों में-से आदेश नित्य होता है जैसा कि-तस्याः रूपं। से रूवं। तयोः रूपं। से रूवं। अस्याः रूपं। से रूवं। इत्यादिक जान लेना ॥१९॥

स्याद्युष्मदः प्रकरणंत्वतऊर्ध्वमत्र
तं तुं तुवंतुहमथस्तुममस्य सौवे ।
स्युस्तविभक्तिसहितस्य तु युष्मदोऽप्याऽऽ
देशाश्च पंचनितरां मुनिभिःप्रणीताः ॥ २६ ॥

टी०—इसके आगे युष्मद् शब्द का विधान है । विभक्ति सहित युष्मद् शब्द को, सु, परे होने से-तं-तुं-तुवं-तुहं-तुमं ये पांच आदेश मुनियों के कहे हुए होते हैं । जैसाकि-त्वं दृष्टः । तुमं दिठ्ठो । इसी तरह और भी ॥ २० ॥

गेहे जसीह खलु युष्मद एव तुम्हेः
तुब्भेः परे शसिविभक्तिमतोऽस्यनित्यम् ।
स्युर्युष्मदोऽप्यमिपरे सविभक्तिकस्याऽऽ
देशास्त्रयोमुनिमतेन तुएतुमन्तम् ॥ २१ ॥

टी०—विभक्ति सहित युष्मद् शब्द को जस् परे होने से, तुम्हे, आदेश होता है । जैसाकि-यूयं मनुष्याः शूराः । तुम्हेमाणुस्सा सूरा । विभक्ति सहित युष्मद् शब्द को शस् परे होने से, तुब्भे, आदेश नित्य होता है । जैसाकि, युष्मान् मनुष्यान् भणामि । तुब्भेमणुस्सा भणामि। विभक्ति सहित युष्मद् को अम् परे होने से । तुए । तुमं । तं । ये तीन आदेश होते हैं ॥ २१ ॥

स्युष्टापरे च किल युष्मद एत एवाऽऽ
देशास्तुमेतइतएत इतीह वेदाः ।

यस्याऽपि तोऽस्यनिलये सविभक्तिकस्याऽऽ
देशास्तु युष्मद इमेङसितूर्यसंख्याः ॥ २२ ॥
ज्ञेयास्तुमाहिमितितोन्त्यतइंस्तुमाओ
हिंतोस्तुमादिरिहशाब्दकृता प्रयुक्ताः ।
स्युर्युष्मदोऽप्यमि परे तुहतुज्झतुम्हा
स्त्वामीति युष्मदइहालय एव तुम्हम् ॥२३॥

टी०—विभक्ति सहित युष्मद् शब्द को, य, परे होनेसे-ते-तुमे-तइ-तए-चार आदेश होते हैं । युष्मद् सम्बन्धि यकार को तकार का आदेश होता है । विभक्ति सहित युष्मद् को पञ्चमी के एक वचन ङसि परे होने से वक्ष्यमाण । तुमाहिं । तुमाहिंतो । तुमाओ । तइं तो । ये चार आदेश होते हैं। विभक्ति सहित युष्मद को, षष्ठी का एक वचन ङस् परे होने से-तुह-तुमज्झ-और-तुम्ह-आदेश होते हैं। विभक्ति सहित युष्मद् को आम् परे होने से-तुम्हं आदेश होता है ॥ २२ ॥ २३ ॥

ङोयुष्मदः किल विभक्तिमतस्तइः स्यात्
सर्वास्वपीह तु विभक्तिषुभेः सदैव ।
सन्त्यस्मदःप्रकरणेत्वनऊद्र्ध्वमेसे
हं चाहमम्हअमग्निरमिताःपरेसौ ॥ २४ ॥

विभक्ति सहित युष्मद् शब्द को, ङि, परे होने से, तइ, आदेश होता है । विभक्ति सहित युष्मद को सर्वविभक्तियो में, भे, आदेश होता है । जैसा किन्त्वंशृणु । भेसुण । त्वांभणामि । भेभणामि, । त्व-

याछतं । भेकयं । अब असमद् प्रकरण में विभक्ति सहित असमद् शब्द को, सु, परे होने । हउं । हं । अहं । येतीन आदेश होते हैं ॥२४॥

अम्हे जसीति ममर्मीहशहे ऽस्मदोऽपि ।
जस्वरपरेशसि विभक्तिमतोऽस्य नित्यम् ॥
स्यादस्मदः किलविभक्तिमतस्सदेवाऽऽ ।
दशौतुटापरउभाविह मेमएस्तः ॥ २५ ॥

टी०—विभक्ति सहित युष्मद् शब्द को जस् परे होने से-अम्हे । आदेश होता है। विभक्ति सहित अस्मद् को अम् परे होने से-मं-आदेश होता है । विभक्ति सहित अस्मद् को शस् परे होने से अम्हे आदेश जस् की तरह होता है । विभक्ति सहित अस्मद् को-टा-परे होने से । मे । मए । ये दो आदेश होते हैं ॥ २५ ॥

स्याद्वेङसाविहविभक्तिमतोमइन्तो
चाऽम्हादिहिन्तइतितस्यपरेभ्यसीह ।
अत्रास्मदोङसि च मइभमहावुभौस्तः
त्वम्हं विभक्तिसहितस्यसदाऽऽमितस्य ॥२६॥

टी०—विभक्ति सहित असमद् शब्द को पञ्चमी का एकवचन अर्थात् ङसि परे होने से । मइं तो । आदेश होता है । उक्त अस्मद् को भ्यस् परे होने से । अम्हाहिन्तो । आदेश होता है । उक्त अस्मद् को षष्ठी का एक वचन अर्थात् ङस् परे होने से । मइ । और ममम्भ-ये दो आदेश होते हैं। उक्त अस्मद् को आम परे होने से फिर अम्हं । आदेश होता है ॥ २६ ॥

ङावस्मदः किलविभक्तिमतो मइर्वे
भेश्चाऽस्मदोऽपिखलु सप्तविभक्तिषु स्यात्।
इत्थं मयामुनिऽविभक्तिविधानमत्र
पद्यैः प्रणीतमितिभूरिमुदेशिशूनाम् ॥ २७ ॥

टी०—विभक्ति सहित अस्मद् शब्द कोङि वचन परे होने से। मइ। आदेश होता है। अस्मद् को सर्व विभक्तियों में। भे। आदेश होता है। इस प्रकार से सातो विभक्तियों के विधान को विद्यार्थियों के बहुत हर्ष के लिये मैंने श्लोकबद्ध वर्णन की है ॥ २७ ॥

इति श्रीप्राकृतप्रथ्याकरणे बृहत्कविविद्याभास्कर पविडत गुरु लालचन्द्र वैयाकरणकेसराविरचिते, विभक्तिविधानात्मकोनामप्रथमोपदेशः।

इस विभक्तिविधान नाम के प्रथमोपदेश के अन्तर्भूत युष्मद् और अस्मद् शब्द के रूपों को लिखता हूं, प्रथम युष्मद् शब्द के ये रूप हैं। प्रथमा विभक्ति के रूप। तं। तुं। तूं। तुवं। तुमं। तुमें। तुहं। बहुवचन के। तुम्हे। तुज्झ। द्वितीया। तुए। तुमं। तं। बहुवचन में। तुज्झे। तुम्हे। तुय्हे। तृतीया में। तुमे। तइ। तए। तुए। बहुवचन में। तुम्हेहिं। तुम्हेहिं। तुम्हेहि पञ्चमी। तुमाहिं। तुमाहिं तो। तुमाओ। तइंतो। बहु.। तुमाहिंतो। षष्ठी। तुह। तुमम्क। तुम्ह। तुहं। बहु.। तुम्हं। तुम्हाण। तुम्ह। सप्तमी। तइ। तुमए। तए। तुम्मि। तुमम्मि। तुहम्मि ॥ अब अस्मद् रूप के शब्द लिखता हूं ॥ हं। अहं। हउं। बहु.। भे। अम्हे। अम्हो ॥ १ ॥ मं। ममं। बहु.। अम्हे। आम्हा। अम्ह ॥२॥ मे। मए। मआ। बहु.। अम्हेहिं। अम्हेहिं। अम्हाहिं ॥३॥

मइंतो । मइत्तो । मत्तो । बहु. । अम्हेहिंतो । अम्हाहिंतो । अम्हेहित्तो ॥५॥
मह । महं । ममर्भ । मभर्म । बहु. । अम्हं । अम्ह । अम्हे । अम्हो ॥६॥
मइ । मए । अम्हम्मि । महम्मि । बहु. । अम्हसु । अम्हेसु ॥ ७ ॥
इनकी साधनिका सुगम रीति से श्लोकों के कृत्य से हर एक विद्वान समझ सकेगा । इसलिये पिष्ट पेष समझ करके मैंने यहां रूपमात्रही दिखाये हैं ॥ २७ ॥

पर्यैरथः स्वरविधानमयोच्यतेऽत्र ।
यत्सन्धिकृत्यमुभयोः पदयोर्नितान्तम् ॥
स्यात्प्राकृतेऽपि किल संस्कृतवत्स्वराणां ।
स्युर्वै स्वरे प्रकृतिलोपकसन्धयश्च ॥ २८ ॥

टी०—अब स्वर प्रकरणात्मक द्वितीयोपदेश को श्लोकरचना से वर्णन करता हूं प्राकृत में जो परस्पर दो पदों में सन्धिकार्य होता है। वह संस्कृत उक्ति के तुल्य होगा । स्वरों को स्वर परे होने से । प्रकृति । लोप । और सन्धि । शिष्टाचार के अनुसार यथा रुचि होते जैसाकि । इह, अच्छ इ । इहछइ । इत्यादि ॥ २८ ॥

संपृक्तवर्णविहितः स्वरउद्धृतस्सो ।
लुप्तेपि वर्ण इह यस्स्वर एव शेषः ॥
स्यादुद्धृते स्वर इहापि परे स्वरस्य ।
सन्धिर्न तत्र नितरां प्रवदन्ति विज्ञाः ॥ २९ ॥

टी०—व्यञ्जन संपृक्त स्वर, अर्थात् व्यञ्जन के लोप से अवशेष रहा स्वर-वह । उद्धृत संज्ञक कहलाता है । स्वर का, उद्धृत स्वर परे होने से सन्धि नहीं होता है ये विज्ञ लोगों का कहा हुआ। यथा. ग अणं । गन्धकुटी । गन्ध उडी ॥ २९ ॥

अस्वेऽपिवर्णे इह नास्ति परे च सन्धिः ।
शाखे पुवर्णे विहितस्य तु प्राकृतेऽत्र ॥
संयोग एव पर एति परे स्वरेऽपि ।
पूर्वस्वरस्तु किल लोपमित प्रयोगे ॥ २० ॥

टी०—इवर्ण और उवर्ण को असवर्ण अर्थात् विजातीय परे न होने से सन्धि नहीं होता है । संयोग है परे जिसके ऐसे स्वर परे होने से पूर्व स्वर का नित्य लोप होता है । यथा-भवति अभी । होइ अघा ॥ पत्ताव्य । पत्तहो ॥ २० ॥

संयोगकाक्षरपरेऽस्ति लघुः स्वराणां ।
मन्यस्वरोऽन्यनिलये भवतीह नित्यम् ॥
स्युर्वै स्वरागिरितिचास्ति ऋवर्णगेहे ।
रूपाणि सिद्धशशि १८ कानि बृहस्पतेऽत्र ॥ २१ ॥

टी०—स्वरों को संयोगाक्षर परे होने से ह्रस्व होता है । जैसा कि काव्यं । कव्वं । कार्यं । कज्जं । इच्छितं । इच्छिअं । अन्यस्वर अन्य स्वर के स्थान में पूर्व ग्रन्थ के कथन के अनुसार होता है । जैसा कि । कर्तव्य । कायव्वं । सज्जनं । मुहं । अङ्गारा । इङ्गाला । पक्ष्मे । पन्थि । वेणि । ऋवर्ण के स्थान में स्वरों का आदेश तथा, रि, आ, य होते हैं । यथा. गृहं । घरं । दरसते । दीसइ । ऋते । रिणं । बृहस्पतिशब्द के १८ रूप होते हैं । यथा. । निअस्सई १ मुमस्सई २ भयस्सई ३ विहस्सई ४ बुहस्सई ५ बइस्सई ६ निअप्फई ७ मुमप्फई ८ भयप्फई ९ बुहप्फई १० विहप्फई ११ बइप्फई १२ निअप्पई १३ मुमप्पई १४ भयप्पई १५ विहप्पई १६ बुहप्पई १७ बइप्पई १८ ॥ २१ ॥

एतयृहे भवति चैः पुनरइस्तदेव ।
औरो त इत्यपि तथाऽउगिहप्रदिष्टः ॥
एदोद्रलोपविधयो हि विसर्गगेहे ।
स्युर्व्यंजनस्य च तथाऽऽगमबिंदुलोपाः ॥२२॥

टी०—ऐत् के स्थान में, ए आदेश और, अइ, आदेश होते हैं। यथा। वैताढ्यः। वेअड्ढो। वैरं। वइरं। ऐश्वर्य्यं। अइसरियं॥ औत् के स्थान में ओ और अउ होते है। यथा, ऊरवं। ओलइं। सौरं। स-उरो। विसर्ग के स्थान में, एत्, ओत्, र, और लोप होते हैं। यथा. कतरः गच्छति। कनरे गच्छइ। अन्तः पुरं। अन्ते उरं। देवः बृाह्मणः। देवो बंभणो। पुनः अपि। पुणरवि। सः एष। स एस। व्यञ्जन को अकार का आगम, अनुस्वार, और लोप होते हैं। यथा। कर्म्म। कम्मं। धर्म। सम्मं। इत्यादि॥ २२॥

स्यादेर्भवेद्विवचनं बहुवाक्यरूपं।
स्यादेस्तथैव किल सर्वविभक्तिपूर्वकम् ॥
षष्ठीवदेवनितरां विहिता चतुर्थी।
आर्षे द्वितीयविषया प्रथमाऽस्ति नित्यम् ॥२३॥

टी०—स्यादि तथा त्यादि विभक्तियों के द्विवचन को बहुवचन आदेश होता है। यथा। देवौ। देवा। बृाह्मणौ। बंभणा। नयनेणो-भेते। णयणाहिन्ते। प्राकृत में चतुर्थी विभक्ति, षष्ठी के रूप से होती है। यथा। नमो जिनेभ्यः। णमोजिणाणं। नमोगुरुभ्यः। णमोगुरुणो। यथा। चतुर्विंशतिरपि जिनवराः तीर्थंकरा मे प्रसीदन्तु। चउवीसंपिजिण-वरातित्थयरामे पसीयन्तु॥ २३॥

आर्षे तृतीयविषया खलु सप्तमी स्यात् ।
वर्णाः प्लुताश्चङञञा न हि प्राकृतेस्युः ॥
ऐऔस्वरौ तत ऋवर्णलृवर्णकौ द्वौ ।
न प्राकृते शषश्चरेव नसन्ति चैते ॥ ३४ ॥

टी०—आर्ष में तृतीयाविभक्ति सप्तमी विभक्ति होती है । यथा । तस्मिन्काले । तेणं कालेणं । प्लुतसंज्ञक वर्ण और ङ । ञ । ञ । और ऐ. औ. ऋ. ॠ. लृ. लॄ. ये प्राकृत में नहीं होते हैं । श. ष. अः । ये भी तीन प्राकृत में नहीं होते हैं ॥ ३४ ॥

एदौत् स्वरौ भवतएव मतेन केषां ।
स्यातां स्ववर्ग्यविषयौ ङञौ तथैव ॥
स्यादागमः प्रकृतिरर्द्धमयं कचिच्चा- ।
नुस्वार कस्य भवति कचिदत्रलोपः ॥ ३५ ॥

टी०—एत् और औत् स्वर, ये किसी आचार्य के मत से होते भी हैं । यथा । कैतं । कैअवं । सौन्दर्य । सौअरिअं । ङ. और, ञ । स्ववर्ग्यसंयुक्त हो तो ये भी प्राकृत में होते हैं । यथा । अंकारः । अङ्कारो । अञ्जियं । अञ्जिनं । अनुस्वार का किसी जगह पर आगम और किसी जगह पर प्रकृतभाव किसी जगह पर अर्द्धानुस्वार और किसी जगह पर लोप होते हैं । यथा । ब्राह्मणाः । बंमणा । सिंघः । सिंगो । देवैः । देवेहिं । यत्तहिं ॥ ३५ ॥

गोर्विहगोभवतिचैव विधौत्रयोऽथ ।
नित्यं भवन्ति णइचेयचियाइईऽर्थे ॥ वा

स्याद्वा अलोप इतिचाऽस्यऽपि युग्मयोस्त ।
एकादशाः किल भवन्ति च पूर्वकाले ॥
तू आणवेप्पिणुविओप्पिणु तूणमुख्याः- ।
तुत्ताट्टु इत्यपि तथात्तुमिहैव चत्वा ॥
अर्थे सदैव मुनिचण्डमतेन सर्वे ।
मत्वर्थएव भवतस्तु किलाऽऽलइल्लौ ॥३६॥३७॥

टी०—गो शब्द को गावी आदेश होता है । यथा । गाई । गावीओ । गावी । गावीं । गावीए । गावीहिं । गावीहिंतो । गावीणं । गावीसुं । गावीसु । एव शब्द के अर्थ में, णइ । चेय । और चिय । आदेश होते हैं । यथा । गत्याएव । गइणइ । मत्याएव । मइणइ । तनूएव । तंचेव । सएव । सचिय । अपि. और असि. इन दोनों के अकार का लोप होता है । यथा. । शूरः अपि । सूरोवि । त्वमसिअत्र । तंसिइह । पूर्वकाल अर्थ में । तु । त्ता । च्चा । ट्टु । तु । तूण । तूआण । ओवि । प्पिणु । वेप्पिणु । ये ग्यारह यथा रुचि होते हैं । यथा । वंदित्वा सर्वान् जिनेन्द्रचन्द्रान् । वंदित्तु सव्वे जिणिन्दचन्दे । वन्दित्ता । भुक्त्वा । भुच्चा । कृत्वा कट्टु । भोत्तुं । भोत्तूण । का उआण । वंदित्वा । वंदिऊ । वंदेवि । वंदेप्पिणु । पणवेप्पिणु । मतु के अर्थ में, आल, और इल्ल, प्रत्यय होते हैं । यथा । जटामान् । जडालो । भाडिल्लो ॥ ३६॥३७॥

स्युर्वन्ततोः किल मतोश्चदशैव नित्यं ।
ते प्रत्ययाः मुनिमतेन यथा क्रमेण ॥
मेल्लोल्ल आलउइ रामणमत्तवन्तो ।
इत्तात्वथ एव गदितामयकेह पद्ये ॥ ३८ ॥

टी०—वतु और मतु के अर्थ में दशप्रत्यय अर्थात् इल्ल । उल्ल । आल । इर । आमरा । वन्तो । मा । मत्त । इत्त । और आलु । होते हैं । यथा । शोभावान् । सोहिल्लो । विकारवान् । विआरुल्लो । श्रद्धावान् । सद्धालो । स्नेहवान् । णेहालू । गर्ववान् । गव्विरो । धनवान् । धणमणो । धणवन्तो । हनुमान् । हणुमन्तो । मानवान् । माणइत्तो ॥ ये प्रत्यय पूर्व मुनियों के मत से मैंने श्लोकबद्ध कहे हैं ॥ ३८ ॥

इल्लोल्लकाविति तु तत्र भवेऽर्थ एवं ।
तत्राऽप्यधोर्थ इह हेट्ठ भवेच्च हेट्ठः ॥
ताताबकाविति तु तावत एव नित्यं ।
जाजावकाविह च यावत इत्यपेस्तः ॥३[illegible]

टी०—तत्र भव अर्थ में, इल्ल । और उल्ल । प्रत्यय [illegible] यथा । ग्रामेभव । गामिल्लो । पुरेभव । पुरिल्लो । अधः के स्थान [illegible] आदेश होता है । यथा । अधोभव । हेट्ठिल्लो । तावत् शब्द [illegible] और, ताव, आदेश और, यावत् शब्द को, जा, और, जाव, [illegible] होते हैं । यथा । तावत् पाति । तापाअइ । तावत्करिष्यति । [illegible] हिइ । यावत् भविष्यति । जाहोहिइ । यावत् भणति । जावभणइ ॥ [illegible]

स्युर्वतस्तदुपमानविधौ पिवो ।
चार्थे पियव्वजहाविवसप्तसंख्याः ॥
घोत्वं भवेदिह च इन्द्रताऽप्ययोर्वे ।
त्वःस्यात् त्वलोस्तु नितरामिह प्राकृतेऽपि ॥४०

टी०—उपमान अर्थ में, वत्, शब्द को । पिव । इव । विव । विय । व्व । व । और, जहा । ये सात आदेश होते हैं । यथा ।

न्दारए। चन्द्रागिन। चारए। चारिन। कन्नरए। कारंविर। ग्रीष्मए। गिम्हविय। सागर। सायरञ्ज। वेगलवए। वेगल्लव। संखवए। संखजहा। अत्र और अव के स्थान में, ओ, होता है। यथा। अवइसितं। ओईसियं। अवसारितं। ओसारियं॥ खलु शब्द को, खु, आदेश होता है। यथा। खलु खत्तं। खु मक्खयं॥ ४०॥

स्याद्वर्त्तमान इह चार्थविधौ यदाऽऽन- ।
स्तस्यार्थ इत्यपितकार इह प्रदिष्टः ॥
यत्प्राकृतेणवरिरेव भवेत्तथाऽऽनं ।
लयार्थ केणवरुकेवलकेऽर्थ भाजि ॥ ४१ ॥

टी०—वर्तमानार्थक आन प्रत्यय के अर्थ में तकार होता है। यथा। नियमानं। भिज्जंतं। कथ्यमानं। कहिज्जंतं। साध्यमानं। साहिज्जंतं। णवरि आनन्तर्य अर्थ में। णवर केवल अर्थ में॥ ४१॥

स्याद्धि यदच्छुडुर्थविच्छिच्छिसत्र थूथू ।
कुत्साविधौ दडवडस्तु भवेत्त्वरायाम् ॥
चेतस्ततोगमनऊर्द्धमुखस्य डवडव ।
हापादपूरण इजे रापिवाऽव्ययंजि ॥ ४२ ॥

टी०—यदि को, छुडु। निन्दाविधि में छिछि और थूथू। शीघ्र अर्थ में, दडवड। अति वेग से ऊर्द्धमुख से इधर उधर गमन में डवडव। आपादपूरण में इजि। एव अर्थ में जि अव्यय होता है॥४२॥

एवार्थकेण उणमत्र चणावईह ।
णाई तथाजाणिजणूतमणुश्च सम ॥

स्यातामुभोजिमतिमो तु यथा तथेऽपि ।
ह्यादेशएव तदियस्त्वितिशब्द कस्य ॥४३॥

टी०—इव अर्थ में, णउ । णं । णाइं । णावइ । जणि । जणु । मणु ये सात प्रत्यय होते हैं । यथा, दूर्णिं । इत्यादिक जानलेना । यथा शब्द को, जिम और तथा शब्द को तिम आदेश होते हैं । यथा । यथा भवति । जिम होई । तथा करिष्यामि । तिमकाहिमि । इति शब्द को, इय, आदेश होता है । यथा । इतिएव । इयएव ॥ ४३ ॥

स्यात्प्रत्ययस्त्तणइहैव तु भावकेऽर्थे ।
प्रायोडकार इह चायुजइक्षणोयः ॥
चाऽनाद्यसंज्ञकमयस्य तु नस्य नित्यं ।
मित्थं सु पूर्णमिहतत्स्वरसंविधानम् ॥४४॥

टी०—भाव अर्थ में, त्तण, प्रत्यय होता है । जैसा कि, ग्रामस्य-भाव । ग्रामत्तणं । नगरस्यभाव । णयरत्तणं । तीर्थंकरस्यभाव । तित्थ-यरत्तणं । स्वर से परे असंयुक्त और अनादि नकार को बहुत करके डकार होता है । जैसा कि । संहननं । संहडणं । संवडणं । संहणणं । इस प्रकार से स्वरों का विधान समाप्त भया ॥२॥—॥ ४४ ॥

इति श्रीपद्यप्राकृतव्याकरणे, बृहत्कविविद्याभास्कर पण्डित गुरु लाल-चन्द्र वैयाकरणकेसरीविरचिते, विभक्तिविधानात्मको नाम द्वितीयोपदेशः ॥

यद्यद्व्यञ्जनप्रकरणं मुनिभिः प्रणीतं ।
ग्रन्थामि पद्यनिकरैरिहपद्यशास्त्रे ॥

हाद्वेयवौपरगताविति लोप संज्ञो ।
यश्चञ्जनं च सवले भ्यउपैति लोपम् ॥४५॥

टी०—मुनियों के कहेहुये प्राकृतसम्बन्धी व्यञ्जनप्रकरण को श्लोक रचनात्मक करके पद्यप्राकृतव्याकरण में रचता हूं। हकार से परे यकार और वकार का लोप होता है। यथा। मुह्यते। मुम्भ्भए। स। व। ल। से परे व्यञ्जन का लोप होता है। यथा। स्वयं। सयं। स्वर्ग। समं। श्रोतव्यं। सोअव्वं। इत्यादि ॥ ४५ ॥

लुग् व्यञ्जनं भवति वर्गपरेऽपि पूर्वं ।
वर्गाद्यमेव किलसेपरएव लोप्यम् ॥
वर्गात्परं स पर मेव विकल्पतोऽत्र ।
यद्वर्गपञ्चम मितीह तु लोपमेति ॥ ४६ ॥

टी०—वर्गपरे होने से पूर्व व्यञ्जन का लोप होता है। यथा। शक्तः। सत्तो। रक्तं। रत्तं। भुक्तं। भुत्तं। स्पृष्टं। पुठं। उत्कृष्टं। उक्किठं। वर्ग के आद्य व्यञ्जन का लोप होता है, सकारपरे होने से। यथा। वृक्षः। वच्छो। क्षमा। खमा। मत्सरः। मच्छरो। ईप्सितं। इच्छिअं। वर्ग से परे या सकार से परे वर्ग के पञ्चम व्यञ्जन का लोप विकल्प से होता है यथा। ज्ञानं। णाणं। यत्नं। जत्तं। लक्ष्मणः। लक्खणो। इत्यादिक जान लेना ॥ ४६ ॥

वर्गात्परञ्च तदवर्ग्यविधं लुगेव ।
स्याद्द्वपरे भवति दस्य लुगेव वाऽत्र ॥

वा लोपमेति तु थकारपरष्टकारो।
लुग् व्यञ्जनेभ्य इति पूर्वगतोऽप्यधोरः ॥४७॥

टी॰—वर्ग से परे अवर्ग्य व्यञ्जन का लोप होता है। यथा। सौख्यं। सुक्खं। शक्रः। सक्को। क्लीवः। कीवो। थकार परे होने से, टकार का लोप विकल्प से होता है। यथा द्वारं। वारं। विकल्प में दारं। देरं। दुवारं। पकार से परे टकार का विकल्प से लोप होता है। उत्कृष्टं। उक्कसं। उक्किठं। समग्र व्यञ्जनों से पूर्वस्थ, या, अधस्थ रकार का लोप होता है। यथा। अर्कः। अक्को। तर्कं। तक्कं। मूर्खः मुक्खो। न्यग्रोधः। णिग्गोहो। इत्यादि ॥ ४७ ॥

वर्गोऽत्रवप्रथम १ पावक २ योर्गृहेद्वि २।
तूर्यो ४ सदैवभवतः क्रमतोद्वयोर्वै ॥
वर्गोऽत्रवाऽग्नि ३ चतुरोः ४ प्रथम १ द्वितीयो २।
गेहे तृतीय इह च प्रथमस्य नित्यम् ॥४८॥

टी॰—वर्गों के प्रथम और तृतीय व्यञ्जनों के स्थान में यथा क्रम से द्वितीय और चतुर्थ व्यञ्जन आदेश होते हैं। यथा। भास्कर। भक्खरो। निश्चयं। णिच्छउ। दुष्टः। दुठो। स्तम्भः। थम्भो। खम्भो। मुखं। मुहं। वर्गों के तृतीय और चतुर्थ व्यञ्जनों के स्थान में यथा क्रम से प्रथम और द्वितीय व्यञ्जन आदेश होते हैं। यथा। नगरं। नकरं। मार्गणः। मकणो। मेघः। मेखो। जर्जरं। चचरं। मदनः। मतनो। प्रथम व्यञ्जन के स्थान में तृतीय व्यञ्जन आदेश भी होता है। यथा। एकं। एगं। पिशाची। पिसाजी ॥ ४८ ॥

हस्स्याद् गृहेऽपि च सदाघधभाऽक्षराणां ।
स्थानेऽपि सस्य नितरांखछहा भवन्ति ॥
गेहेऽपि यस्य भवतीह ज एव नित्यं ।
मोवागृहे भवति वै पवयोरपीह ॥ ४६ ॥

टी०—ख। घ। और, भ, के स्थान में, हकार होता है। यथा। मेघः। मेहो। माधवः। माहवो। वृषभः। वसहो। सकार के स्थान में ख। छ। और। ह। आदेश होते हैं। यथा। भिक्षा। भिक्खा। षण्मुखः। छम्मुहो। पाषाणः। पाहाणो। दश। दहो। यकार के स्थान में जकार आदेश होता है। यथा। यौवनं। जुव्वणं। सूर्यः। सुज्जो। यात्रा। जत्ता। पकार और, वकार, के स्थान में विकल्प से मकार होता है। यथा। सवरो। समरो। स्वप्नः। सिविणो। सिमिणो। पूर्वः। पुरिमो। पुव्वो॥४६॥

वर्गौचटौ किल तवर्गगृहे क्रमेण।
जस्यैवरोभवति सोरशषाऽक्षराणाम्॥
स्थाने भवन्तिरणखाह जथाऽक्षराणां।
गेहे भवन्तिघणभागरहाऽक्षराणाम् ॥५०॥

टी० – तवर्ग के स्थान में चवर्ग और टवर्ग होते हैं। यथा। नित्यं। णिच्चं। पथ्यं। पच्छं। विद्या। विज्जा। वन्ध्या। वंज्जा। जकार के स्थान में रकार होता है। यथा। व्युत्सृजामि। वोसरामि। यष्टिः। लट्ठी। रेफ। शकार और षकार के स्थान में सकार होता है। यथा। शिरं। सीसं। शची। सती। आमिषं। आमिसं। ह। ज। और, था, के स्थान में। र। ण। और, ख, होते हैं। यथा। गृहं। घरं। ज्ञानं।

णाणं । राजा । राणा । इत्यादि । ग । र । और । ह के स्थान में । घ । ण । और, रू होते हैं । यथा । गृहं । घरं । करवीरः । कणवीरो । कणीरो । करोति । कुणइ । इत्यादि ॥ ५० ॥

घाधोऽपदस्थितिभृतां नणमाऽक्षराणां ।
सम्बन्धिनौ किल सहौ तु तयोर्हि लोपे ॥
हस्याऽऽगमो भवति लोप विधौ द्विरूपं ।
स्थाने भवन्ति वलभामडहाऽक्षराणाम् ॥५१॥

टी०—अपद के आदि में अधः स्थित. न । ण और. म. के सम्बन्धि । स । और । ह के लोप होने से हकार का आगम होता है। यथा । प्रश्नः । पण्हो । वह्निः । वण्ही । कृष्णः । कण्हो । यस्मात् । जह्मा । संयोग के अक्षर का लोप होने से अव शेषवर्ण को द्वित्व होता है । यथा । दुर्गः । दुग्गो । शक्रः । सक्को । व्याघ्रः । वग्घो । म । ट । और । ह के स्थान में यथा क्रम से । व । ल । भ । होते हैं । यथा । मन्मथः । वम्महो । षोडशः । सोलस । जिह्वा । जिब्भा । गरुडः । गरुलो । तडागः । तलाओ ॥ ५१ ॥

व्यत्यासएव पवयोरलयो रपीह ।
संयोगके क्वचिदलोपविधौ द्विरूपम् ॥
द्वित्वे द्वितीयचतुर्गः प्रथमाऽ १ म्रि ३ संज्ञे ।
योगाऽऽद्ययोरुदितशेष विधौ सएव ॥५२॥

टी०—पकार और वकार का व्यत्यास होता है । पापं । पावं । वापं । रकार और लकार का व्यत्यास होता है । यथा । पर्यङ्कः । पलङ्को । वैदूर्यः । वेरुलिओ । त्रयोदशः । तेरह । कहीं विना लोप भी

द्वित्व होता है। यथा। नश्यते। णस्सइ। तैलं। तेल्लं। उस द्वित्व में वर्तमान, द्वितीय और चतुर्थ व्यञ्जन को संयोगादि प्रथम और तृतीय व्यञ्जन होते हैं। और उक्त अव शेष को द्वित्व होने से वही होता है। यथा। सौख्यं। सुक्खं। अर्थः। अत्थो। पथ्यं। पच्छं। उपाध्यायः। उवज्झाओ। षष्ठः। छट्ठो। वृद्धः। वुड्ढो॥ उक्त अव शेष यथा। अर्कः। अक्को। स्वर्गः। सग्गो। सत्यं। सच्चं। सर्पः। सप्पो॥ ५२॥

द्वित्वं नवे भवति प्राकृत के पदादौ।
लोपेकृतेऽन्त्य इति न क्वचिदत्रशास्त्रे॥
मध्ये पदस्य खलु नैव भवेद् द्विरूप।
मिष्टस्वरागम इहो भयवर्णमध्ये॥ ५३॥

टी०—पद के आदि में द्वित्व नहीं होता है। यथा। क्रोधः। कोहो। क्षुद्रः। खुद्दो। प्राकृत में कहीं २ लोप होने से पद के अन्त्य में या पद के मध्य में द्वित्व नहीं होता है। यथा। काश्यपः। कासवो। वैश्रवणः। वेसवणो। दीर्घः। दीहो। उत्कर्षं। उकसं। संयोग के अर्थात् दो व्यञ्जनों के मध्य में मुनिवाञ्छित नियत पदों के सदृश हर एक स्वर का आगम होता है। यथा। अग्निः। अगणी। विश्लेषः। विसलेसो। वर्ष। वरिसं। श्रीः। सिरी। अर्हत्। अरिहंतो। आचार्यः। आयरिओ। स्त्री। इत्थी। वज्रं। वइरं। कृष्णं। कसिणं। क्षमा। खमा। पृथ्वी। पुहवी॥ ५३॥

गेहे सदैव यवयो रिदुतौ भवेतां।
संख्योक्तयोर्हि तिशयोर्भवतीह लोपः॥

संख्योदितस्य किल तस्य लुगेव तत्र ।
घरडोक्तिलक्षणविधौ सततं प्रणीतः ॥५४॥

टी०—यकार और यकार के स्थान में इत् और उत् होता है। यथा। त्रयोदश। तेरह। त्रयस्त्रिंशत्। तेतीसा। त्रयोविंशत्। तेवीसा। भवति। होइ। संख्यासम्बन्धी। ति। और-श-का लोप होता है। यथा। विंशति। वीसा। पञ्चाशत्। पण्ण। संख्यासम्बन्धी तकार का भी लोप होता है। यथा। पञ्च पञ्चाशत्। पण्ण पण्ण। ये सर्व प्राकृतीय कार्य घरडाचार्य की उक्ति के लक्षण में लिखे हैं ॥ ५४ ॥

संयोगादिवियुजां स्वरतः परेषां ।
प्रायः कगचजतदपाश्चयवोर्लुगेव ॥
आदावपि क्वचिदथोऽस्तियुजोह लोपः ।
पूर्वोक्तनन्दकगचांजतदाऽऽदिकानाम् ॥५५॥

टी०—स्वर से परे अनादिभूत और असंयुक्त। क। ग। च। ज। त। द। प। य। व। इन वर्णों का प्रायःकरके लोप होता है। यथा। काकः। काओ। कोकिला। कोइला। नागः। णाओ। पिसाचः। पिसाओ। गजः। गओ। शितं। सिअं। मदः। मओ। नुपूरं। णेउरं। निश्चयः। णिच्छओ। देवः। देओ। कहीं आदि में भी लोप होता है। यथा। पुनः। उणो। गन्धं। अन्धं। वृषभः। उसहो। कहीं संयुक्त वर्णों का भी लोप होता है। यथा। नक्तञ्चरः। णअञ्चरो। नमस्कारः। णमोयारो। नवकारः। णवयारो ॥ ५५ ॥

पूर्वोक्तनन्दकगचांलुकिशेष भूतोऽ-।
वर्णोऽप्यवर्णपरणति च यस्त्वमत्र ॥

प्रायः पदात् क्वचिदिमेन हि लुप्तदेहाः ।
शिष्टोक्ति लौकिकमतेन तथामयोक्ताः ॥५६॥

टी०—पूर्वोक्त. क. ग. च. आदिक नव वर्णों के लोप होने से शेष अवर्ण को अवर्ण परे होने से यत्व होता है। यथा । काकाः । काया । नागा । णाया । पिशाचा । पिसाया । वनराजः । वणरायो । माता । माया । प्रायः । पद के कथन से कहीं लोप नहीं भी होता है। यथा । सुपथः । सवहो । शापः । सावो । ये सब कृत्य, शिष्टों की उक्ति मय शास्त्रों से मैंने वर्णन किये हैं ॥ ५६ ॥

यद्व्यञ्जनप्रकरणं कथितं तृतीयं ।
सत्प्राकृतोक्तिविषयं मुनिभिः प्रणीतम् ॥
तत्पूर्णमत्रमयकारचितं सुपद्यैः ।
बोधप्रदं प्रतिदिनं शिशुपाठकेभ्यः ॥५७॥

टी०—जो व्यञ्जनों का तीसरा प्रकरण कहा गया जैसा कि प्राकृत ग्रन्थों में मुनियों ने वर्णन किया है । वह मैंने विद्यार्थी बालकों के प्रतिदिन बोधदायक श्लोकबद्ध रच कर समाप्त किया है ॥ ५७ ॥

इति श्रीपद्यप्राकृतव्याकरणे, बृहत्कविविद्याभास्कर पण्डित गुरु लालचन्द्र वैयाकरणकेसरीविरचिते, व्यञ्जनविधानात्मको नाम तृतीयोपदेशः ॥

भाषान्तरप्रकरणं यमथप्रवक्ष्ये ।
पद्यैरहं मुनिमतेन च लोकरीत्या ॥
चाधास्स्थितस्य न हि रस्य च लोपएवाऽ- ।
पभ्रंशएव मिह शब्दविदोवदन्ति ॥ ५८ ॥

टी०—भाषान्तर अर्थात् दूसरी भाषा ए जो प्राकृत भाषा के अन्तर भूत है, उनका प्रकरण जो के मुनिमत के अवलम्बी शास्त्रों की रीति से पूरित है, वो वर्णन करता हूं और इसी प्रकरण में श्रीमान् हेमचन्द्राचार्य का मत भी दिखाता हुवा श्लोकबद्ध रचना करता हूं। अपभ्रंसभाषा में अधो रेफ का लोप नहीं होता है। यथा। व्यासः। व्यासो॥५८॥

दृष्टौ यथा वररुचिप्रथितेऽपि शास्त्रे।
नित्यं तृतीय ३ जल ४ योरयुजोरनादौ॥
वर्गस्य चाऽद्यविहितौ प्रथमद्वितीयौ।
पैशाचिकोक्तिविषये मयकाऽपि चोक्तौ॥५९॥

टी०—महा कवि वररुचि के मत में जो पैशाचि की भाषा में असंयुक्त और अनादि भून, जो, वर्ग का तृतीय और चतुर्थ वर्णों को वर्ग के आदि प्रथम और द्वितीय वर्ण का आदेश किया है। यह मैंने भी यहां पर लिखा है॥ ५९॥

चण्डोदित प्रचुरमागधिकाविधौ च।
स्यातां सदैवरसयो र्लिह वैलशौद्वौ॥
तस्यांकृतो वररुचिप्रथितेऽपि जस्य।
नित्यं यकार इति शब्द विधानशास्त्रे॥६०॥

टी०—चण्डाचार्य के मत में मागधी भाषा में। र। और, स,। को। ल और. श. होते हैं। उक्त भाषा में महा कविवररुचिकृत ग्रन्थों में। जकार को यकार किया है॥ ६०॥

तत्रैवतेन हृदयस्य कृतोहडक्को।
विद्वद्वरेण कविना खलु मागधोक्तौ॥

चण्डेन तस्य द इतीह च शौरसेन्यां ।
पैशाचिकीविषयके रणयोर्लनौ च ॥ ६१ ॥

टी०—फिर महाकवि वररुचि के मत से मागधी भाषा में हृदय शब्द को, हडक, आदेश होता है । चण्डाचार्य ने शौरसेनी भाषा में, तकार को, दकार आदेश लिखा है । और पैशाचकी भाषा में. रकार और णकार के स्थान में. लकार और नकार का आदेश लिखा है ॥ ६१ ॥

दृष्टौ यथा वररुचीहितशब्दशास्त्रे
नित्यं तथैव तथयोस्तु दधावनादौ ।
तत्राऽयुजोः प्रकृतिसंस्कृतशौरसेन्यां
पद्यप्रबन्ध इह वैमयकाऽपिचोक्तौ ॥ ६२ ॥

टी०—जैसा वररुचि महाकवि के मान्यशास्त्र में अनादि और असंयुक्त । त । और, थ, को । द । और ध का होना प्रकृति संस्कृत सौरसेनी भाषा में देखा है वैसाही पद्यप्राकृतव्याकरण में मैंने लिखा ॥६२॥

तस्यां सृगालकपदस्य गृहेऽपितेनाऽऽ
देशाः कृताः किल शिआलमुखा नितान्तम् ।
चण्डेन शास्त्रविधितोविहिताऽत्रभाषा
स्वीयोक्तिलक्षणविधौ किल परिमता वै ॥
यत्संस्कृतं तु खलुप्राकृतसंज्ञकंचाऽ
पभ्रंशमागधिपैशाचिकिसौरसेन्यः ।
देशान्तरीयवचनैरचनात्मिकाश्च

टी०—उक्त सौरसेनी भाषा में महाकवि वररुचि ने प्रगात प्रत्यहा विश्वाल प्रभृतिक आदेश किये हैं। भरताचार्य ने पूर्व शास्त्रों की रीति से अपने निर्मित प्राकृत लक्षण में षट् भाषा कही है ॥ ६२ ॥ संस्कृत १. प्राकृत २ अपभ्रंश ३ मागधी ४ पैशाचिकी ५ और शौर सेनी ६। ये छः भाषायें देशदेशान्तर की शक्ति से पृथक् २ पदों की रचनाओं और प्राचीन मुनियों से फैलाई [redacted] हैं वो उक्त विद्वान् ने भी अपने ग्रन्थ में कही हैं ॥ ६४ ॥

शब्दोऽधिकारविषयोऽथ सदैवचानं
तार्यार्थ यत्र विहितः मुनिनानितान्तम् ।
यत्प्राकृतीयलघुवृत्तिमयेऽपिशास्त्रे
ध्यायोऽष्टमस्य शकजेऽत्रतुरीयपादे ॥ ६५ ॥

टी०—अब श्रीमान् हेमचन्द्राचार्य का मत सूक्ष्म रूप से इस ग्रन्थ में वर्णन करता हूँ। उक्त महामति विद्वान् ने अपनी बनाई हुई सिद्ध हेमचन्द्राभिधानस्वोपज्ञशब्दानुशासन लघुवृत्ति के अष्टम अध्याय के चतुर्थ पाद में, अथ शब्द को अधिकार अर्थ में तथा आनन्तर्य अर्थात् परमूलक अर्थ में कहा है और हमारे महामुनि पतञ्जलि महाराज ने महाभाष्य के प्रारम्भ में अथ शब्द को केवल अधिकारार्थ वाचकही कहा है ॥ ६५ ॥

तेनाऽपि ये प्रकृतिप्रत्ययलिङ्गमुख्याः
[illegible]

सन्धिर्महिस्वर इहाऽपितिवादिकानाम् ॥६६॥

टी०—उक्त हेमचन्द्राचार्य महाविद्वान ने भी प्राकृत में, प्रकृति, प्रत्यय, लिङ्ग, कारक, समास, तथा संज्ञा आदिक के कृत्यों को संस्कृत के तुल्य कृत्य में प्राप्त किये हैं और तिवादिकों के स्वर परे होने से स्वरों के सन्धिका होना नहीं माना है। यथा। भवति इह। होई इह॥६६॥

आर्षं तु प्राकृतमथो बहुलं सदैव
वृत्तौ समास इति चेल्लघुदीर्घसंज्ञौ।
स्यातां मिथोऽपि बहुलंह्युभयोस्वराणां
राऽऽदेश एव महिलाविषयेऽन्त्यरस्य ॥ ६७ ॥

टी०—आर्ष संज्ञक प्राकृत सदैव बहुल अर्थात् विकल्प से होते हैं। वृत्ति में और समास में स्वरों को दीर्घ और ह्रस्व विकल्प से होते हैं। स्त्रीलिङ्ग में वर्त्तमान अन्त्य रेफ को, रा आदेश होता है। यथा। गिर्। गिरा। धुर्। धुरा॥ ६७॥

यद्व्यंजनं भवति तस्य लुगेव नित्यं
शब्दोद्भवस्य च पदस्य तदन्त्यमत्र।
लुग्नान्तरोनिर्दुरोस्तु परे स्वरे वै
पद्यात्मकं भवति हैममतेन चात्र ॥ ६८ ॥

टी०—शब्दों के अन्त्य व्यञ्जन का लुक् नित्य होता है। यथा। यावत्। जाव। तावत्। ताव। अन्तर् का और निर् दुर् के अन्त्य व्यञ्जन का स्वर परे होने से लुक् नहीं होता है। अन्तरात्मा। अन्तरप्पा। निरन्तरम्। दुरन्तरम्। इत्यादिककार्य हेमचन्द्राचार्य के मत से मैंने भी पद्य प्राकृत व्याकरण में लिखे हैं॥ ६८॥

दिक् प्रावृषोः स इह चान्त्यगतस्य नित्यं
सो व्यंजनस्यवयसप्सरसोर्द्वयोर्वा
अन्त्योदितस्य किलमस्य भवेत्सदैवाऽ।
नुस्वार एव खलु हेममतेन गीतः ॥ ६६ ॥

टी०—दिक् शब्द और प्रावृष शब्द के अन्त्य व्यञ्जन को, स आदेश होता है। यथा। दिक्। दिसा। प्रावृष् । पाउसो । आयुष् और अप्सरस् शब्द के अन्त्य व्यञ्जन को, सकार विकल्प से होता है। दीर्घायुः दीहाउसं । दीहाऊ। इत्यादि। अन्त्याश्रित मकार का अनुस्वार होता है। जलम्। जलं। फुलम्। फुलं। ये सर्व सूत्र हेमचन्द्राचार्य के मत से मैंने भी श्लोकबद्ध रचे हैं॥ ६९ ॥

वर्गे परे ङ ञ ण नां सततं भवेच्चाऽ
नुस्वार एव पद सन्धिविधौ सदैव।
श्रीहेमचन्द्ररचित लघुवृत्तिरूपे
शब्दानुशासनविधौ विहितस्तथाऽत्र ॥ ७० ॥

टी०—ङ। ञ। ण। और न के स्थान में व्यञ्जन परे होने से अनुस्वार होता है पद में, वा, पदसन्धि में। यथा। पङ्क्ति। पंति। कञ्चुकः। कंचुओ। षण्मुख.। छंमुहो। सन्ध्या। संझा। ये सर्व कार्य। श्रीहेमचन्द्राचार्य के रचे हुये लघुवृत्तिरूप शब्दानुशासन प्राकृत शास्त्र में लिखे हैं। यद्यपि इस पद्य प्राकृत व्याकरण में प्रायः करके हेमाचार्य्य महाविद्वानहो के मत से मैने उपदेश लिखे हैं तथापि विशेष कृत्यों में से संक्षेपतर यहां पर भी दिखाये हैं॥ ७० ॥

एवं त्रिलिङ्गविषयेऽत्रसदेवशब्द-
रूपाणि यानि विहितानि तु प्राकृतीये ।
श्रीहेमचन्द्ररचिते किल शब्दशास्त्रे
संदर्शयामि खलु तान्यपि बोधवृध्यै ॥ ७१ ॥

टी०—इसी प्रकार से तीनों लिङ्गों में जो अकारान्त, इकारान्त ईकारान्त और उकारान्त और आकारान्त आदि शब्दों के रूपों को श्रीहेमचन्द्राचार्य ने निजरचित प्राकृत शास्त्र में कहे हैं उनमें से अकारान्त, आकारान्त शब्द रूपों को श्लोक १६ की टीका में लिख चुका हूं और शेष रहे हुओं को यहां पर विद्यार्थियों के बोधवृद्धि के अर्थ दिखाता हूं। यथा। पुलिङ्ग वाचक इकारान्त, अग्नि शब्द के रूप। १ अग्गी। अग्गीओ। अग्गीणो ।१। अग्गिं। अग्गिणो।२। अग्गिणा । अग्गी हिं।३। अग्गिणो । अग्गिस्स। अग्गिण। अग्गिणं।४। अग्गिणो। अग्गिहिंतो ॥५॥ षष्ठी चतुर्थी वत् । अग्गिम्मि । अग्गीसु । अग्गीसुं ॥ ७ ॥ सम्बोधन में । हे अग्गि । हे अग्गीओ ॥ ८ ॥ अब उकारान्त पुलिङ्ग वाचक । मधुः । शब्द के रूप । यथा। प्रथमा। महू । महूओ । महुणो । १ । महुं । महुणो ।२। महुणा महू हिं ।३। पञ्चमी । महुणो। महुहिंतो ।५। महुणो । महुस्स । महुणं। महुण ।६। महूए। महुम्मि। महुसु। महुसुं।७। सम्बोधन में । महु । महुओ ।८। अब पुलिङ्ग वाचक ऋकारान्त कर्तृ शब्द के रूप यथा प्रथमा के रूप। कत्तारो। कत्तुणो।१। कत्तारं। कत्तुणो।२। कत्तुणा। कत्तारेण। कत्तुहिं।३।पं-कत्तुणो कत्तुहिं तो।५।कत्तुणो।कत्तारस्स। कत्तुणं।कत्तारे।कत्तुम्मि।कत्तुसुं कत्तुसु।७।सम्बोधन में । हे कत्तार । हे कत्तारा । ८ । अब स्त्रीलिङ्गवाचक ईकारान्त शब्द नदी । शब्द के रूप । णई । णईओ । णई उ । णई ॥ १ ॥ णइं । णईओ । णइउ ।

णई । २। णईए । णईहिं । णईहिं । णईहि ।३। पञ्चमी । णईए । णईहिंतो ।५। णईए । णईणं । ६ ॥ णईए । णईसु । णईसुं ।७। सम्बोधन में । णई । णईओ । णईउ ॥ अब स्त्रीलिङ्गवाचक उकारान्त धेनु शब्द के रूप यथा । धेणू । धेणूओ । धेणूउ । धेणू ।१। धेणूं । धेणूओ । धेणूउ । धेणू ।२। धेणूए । धेणूहिं । धेणूहिं । धेणूहि ।३। पंचमी । धेणूए । धेणूहिंतो ।५। धेणूए । धेणूणं ।६। धेणूए । धेणूसु । धेणूसुं ।७। संबोधन में । धेणू । धेणूओ धेणूउ ॥ अब स्त्रीलिङ्ग वाचक ऋकारान्त शब्द । पीतृ शब्द के रूप । पोआ । पोआ ।१। पोअं । पोअँ । २ । पोआए । पोएहिं । पोएहिं पोएहि ।३। पोआए पोआहिंतो ।५। पोआए । पोआणं । पोआण । ६ । पोआए । पोआसु । पोआसुं ।७। संबोधन में । पोअ । पोआ । ८ । अब नपुंसकलिङ्ग वाचक इकारान्त अक्षि शब्द के रूप । अक्षिं । अक्षि । अच्छीणि । अच्छीइं । अच्छीइ । १ । अक्षिं । अक्षि । अच्छीणि । अच्छीइं । अच्छीइ ।२। और सब विभक्तियों के रूप पुल्लिङ्ग वत् जान लेना ॥ अब नपुंसकलिङ्ग वाचक उकारान्त मधु शब्द के रूप । महुं । महु । महूणि । महूइं महूइँ ।१। महुं । महु । महूणि । महूइं । महूइँ ।२। और सब विभक्तियों के रूप पुल्लिङ्ग के तुल्य समझ लेना ॥ ७१ ॥

यत्प्राकृतीयरचने क्वचिदत्र सूत्र-
वृत्त्याऽनुरोधसहितं श्रुतभङ्गमीक्ष्य ।
तत्रस्थलेविनिमयस्त्वरवर्णयोश्च
साहित्यशास्त्रवचनेषु विविच्य नीतः ॥ ७२ ॥

टी०—इस पद्य प्राकृत व्याकरण के बनाने में किसी जगह पर सूत्र वृत्ति के तात्पर्य स्पष्ट आने से जो छन्दोभङ्ग होने को देखकर

उस स्थल में स्वर और वर्ण को साहित्यशास्त्र के बचनों में बिचार करके रक्खा जैसा कि साहित्य में बहुत जगे में लिखा है कि किसी जगे दीर्घ को ह्रस्व मान लेना किसी जगह ह्रस्व को दीर्घ समुझ कर निर्वाह कर लेना ॥ ७२ ॥

कुत्रापि दीर्घविषयं लघुना विरच्य
निर्वाहमत्र च कृतं गुरुणा लघोर्वै ।
कुत्राऽपि सस्वरविधौ खलुनिस्स्वरत्वं
मत्वा सुवृत्तविषयो विशलीकृतोऽसौ ॥७३॥

टी०—किसी जगह पर दीर्घ विषयक वर्ण को लघुसंज्ञा से विरचित करके और किसी जगह पर लघु को दीर्घ भाव से वर्णन करके निर्वाह किया है किसी जगह पर सस्वर को नि स्स्वर और निस्स्वर को सस्वर मानकर छन्द को सम्पूर्ण किया है ॥ ७३ ॥

या चेहमत्र विदुषः शिरसा प्रणम्य
ग्रन्थे मदीयरचितेऽप्युदितं विलोक्य ।
सन्त्यज्य पक्षमिति तैस्सुदलं प्रदेयं
मुद्रापणेपुनरपीह तदाऽऽहरिष्ये ॥७४॥

टी०—भूमण्डल के विद्वानों को मैं शिर से प्रमाण करके याचना करता हूं कि मेरे बनाये हुये पद्य प्राकृत व्याकरण ग्रन्थ में जो मैंने पूर्वोक्त वृत्तान्त लिखे हैं यदि इसके सिवाय भी कोई असङ्गतरूप दृष्टि गोचर हो, तो पक्षपात को त्याग करके दया की दृष्टि से मुझको कृपापत्र देना चाहिये ताकि इस ग्रन्थ को दूसरी बार छपाने के समय में आप शिष्ट विद्वानों के लिखे हुये वृत्त को उसमें सामिल करदिया जावेगा ॥ ७४ ॥

भाषान्तरप्रकरणं मुनिभिः प्रणीतं ।
पद्यैर्मया रचितमत्र सुपूर्णमास ॥
षट्पञ्चनन्दशशि १६५६ सम्मितवत्सरेपि ।
मासे शुचौ शुचिदले दशमीतिथौ च ॥७५॥

टी०—भाषान्तर प्रकरण जो कि पूर्व मुनियों का कहा हुआ है, वह श्लोकबद्ध मैंने रचा है, वो सम्वत् १९५६ आषाढ़ सुदि दसमी तिथि के दिन सम्पूर्ण हुआ है ॥ ७५ ॥

पद्यात्मकं मनुजभाषितभाष्ययुक्तं ।
श्रीयोधसंज्ञकपुरे मरुनीवृतीह ॥
विद्याविभावसुबृहत्कविपण्डितेन ।
यल्लालचन्द्रकविना रचितं मयेदम् ॥७६॥

टी०—श्लोकबद्ध प्राकृतव्याकरण भाषा टीका सहित को, मारवाड़ देश के अन्तर्गत जोधपुर सहर में, विद्याभास्कर, बृहत्कवि पण्डित लालचन्द्रकवि नाम के मैंने रचा ॥ ७६ ॥

इति श्रीपद्यप्राकृतव्याकरणे, बृहत्कविविद्याभास्करपण्डितगुरुलालचन्द्रवैयाकरणकेसरीविरचिते भाषान्तरप्रकरणात्मको नाम चतुर्थोपदेशः ॥ ४ ॥ शमस्तु पाठकानाम् ।

सूचना ।

इस पद्य प्राकृत व्याकरण की रजीष्ट्री एक्ट २५ नियमानुसार कराई है सो इस ग्रन्थ को छापने छपवाने का अधिकार सिवाय ग्रन्थकर्त्ता के किसी को भी नहीं है ॥

पुस्तक, पद्यप्राकृतव्याकरण भाषा टीका सहित मिलने का पता—

[illegible]

[illegible]

(राजपूताना)

बाहिर मगानेवालोंको—

वी. पी. पोष्ट तथा डाकव्यय अलग देना पड़ेगा ।